शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अगस्त 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

नरेश मेहता के काव्य में सांस्कृतिक एवं राजनैतिक बोध

डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि (अतिथि विद्वान)
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय जैतवारा
सतना, मध्य प्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त श्री नरेश मेहता के रचना संसार का फलक अत्यंत व्यापक है। पौराणिक आख्यानों को वर्तमान सन्दर्भ से जोड़कर अनेक नए प्रश्नों को उपस्थित करना उनकी सृजनधर्मिता का परिचायक है। उनके साहित्य में आने वाले बिम्ब पूरा चित्र नहीं उभरता है। उनके खंड चित्र उनकी श्रेष्ठ काव्य कला की परिचायक है। प्रस्तुत शोध पत्र में नरेश मेहता के काव्य में सांस्कृतिक एवं राजनैतिक बोध पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

समिधा भाग एक की भूमिका में नरेश मेहता ने लिखा है, "संस्कृति भ्रामक शब्द है। फिर भी संस्कृति की शोध तो की ही जा सकती है और हम मनुष्य के आदिकाल के काव्य से भावों की विराटता ग्रहण करके सुन्दर कल्पना प्रधान साहित्य रच सकते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों के उदाहरण रूप में मेरी उषस् है। ऋतु की इस नित्यकौमार्य कन्या का मैं प्रतिदिन अपने क्षितिज पर आह्वान करता हूँ। वह हमारे खेतों में अपने पति सूर्य के साथ हमारे बीजों में अपनी गरम-गरम किरणें बोकर गेहूँ उपजाती है।"1

दूसरे सप्तक से ही कवि का सांस्कृतिक दृष्टिकोण स्पष्ट होने लगा था। वैसे सांस्कृतिक या संस्कृति बोध एक व्यापक शब्द है। वैदिक वातावरण का चित्रण, प्रकृति के रम्य रूपों का चित्रण, जनमानस के प्रति संवेदनात्मक दृष्टि ये सब हमारी संस्कृति के अंग हैं और साहित्य व इतिहास की अपेक्षा यह आवश्यक होगा कि हम पहले अपनी संस्कृति से भली-भांति परिचित हों, परिचित होने के साथ हम उसके अन्तरंग भी बने रहें -

"ग्वालिन-सी ले दूब मधुर,
वसुधा हँस-हँस के गले मिली,
चमका अपने स्वर्ण सींग वे,
अब शैलों से उतर चलीं
बरस रहा आलोक दूध है,
खेतों खलिहानों में,
जीवन की नव किरन फूटती
मकई के धानों।।"2

वैदिक वातावरण की एक बानगी और देखिए-

"सिंचित है केसर के जल से,
इन्द्र लोक की सीमा,
आने दो सैन्धव घोडों का
रथ कुछ हल्के धीमा,
पूषा के नम के मंदिर में
वरूण देव को नींद आ रही
वंशी का संगीत गा रही।"3

यह देश संस्कृति का देश है, अपार ज्ञान और सम्पदा से भरा पडा है, सदियों से भारतीय मानव की महिमा का वर्णन किया गया है। यहां के मानव की एक विशेषता देखिए -

"मानव जिस ओर गया
नगर बने, तीर्थ बने,
तुमसे है कौन बडा
गगन-सिन्धु मित्र बने।"4

इस वैदिक भूमि को कवि ने भी वैदिक दृष्टि से ही देखा यथा :

"मैंने इस भूमि को जब भी देखा है

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अगस्त 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

गायत्री ही देखा है
कभी नदियों को उनके एककान्त में देखो -
औषधियों का आचमन करती हैं
पेडों के फलों
गायों के दूध और
मनुष्य मात्र की दृष्टि
किसी को भी सूँघो
सूर्य की सुगन्ध मिलेगी
कहीं भी जाओ
एक सम्पूर्ण अनुष्टुप
इस पृथ्वी पर ही लिखा मिलेगा।"5

नरेश जी के सांस्कृतिक प्रस्तुतीकरण में कोई वाद नहीं। कहना न होगा कि शैव, वैष्णव के द्वंद्व में नहीं पडे। जीवन या दिन का सही सदुपयोग हो जाए, मानो आज की पूजा हो गई -

"सच, आज का दिन
एक वृक्ष की भाँति जिया
और प्रथम बार वानस्पतिक समर्पणत जगी""6

कवि नरेश मेहता यहाँ की संस्कृति के प्रति इतने संवेदनशील हैं, इतने जिज्ञासु हैं कि वह अपनी सारी आयु को बस यहीं इस देश के लिए समर्पित कर देना चाहते हैं। कवि कहता है कि

""मैं अपनी आयु की वानस्पतिक गंध
फूल को सौंप देना चाहता हूँ
ताकि वह
मेरे पुण्यों की मयूरपंखी उत्सवा वन
सूर्य के धूप-मुकुट की
जयकार बने।"7

नरेश मेहता का सम्पूर्ण काव्य भारतीय संस्कृति व भारतीय चिन्तन का कुशल सम्मिश्रण है। संकीर्णता, हीनता, उत्पात, हिंसा आदि कहीं दूर-दूर नजर नहीं आते। भारती को यदि समकालीन कवि के रूप में भारतीय चिन्तन/संस्कृति का प्रवक्ता चुनना पडे तो वह निश्चित रूप से नरेश मेहता को ही चुनेगी। आप हर दृष्टि में बेजोड हैं।

राजनैतिक चेतना

कवि वैसे तो राजनीतिज्ञ नहीं होता फिर भी वह राजनीति का अंग अवश्य होता है। पहले कवि राजनीति से कोसों दूर था और पहले राजनीति भी इतनी दूषित न थी जितनी की आज है, फिर बेचारा कवि क्या करे ? यदि वह अपनी कविताओं/रचनाओं के माध्यम से इसे प्रस्तुत नहीं करता तो वह अपने कर्म के प्रति न्याय नहीं कर पाता। राजनीति अब केवल राजनीति ही नहीं बल्कि समाज की नियति हो चुकी हैं। सामाजिक नियति किस परिणाम की ओर अग्रसर है। व्यक्ति की उसमें क्या भूमिका है ? और भविष्य में क्या होगी ? राजनीति ही साक्षात्कार का महत्वपूर्ण साधन है। राजनीति कविता का साधन नहीं है बल्कि कविता राजनीति को समेटे हुए है नहीं तो -

"सूचना विभाग के पोस्टरों पर,
खुशहाली है चारों ओर,
कंगालों के पास आटा नहीं
सिर्फ गाली है
और कोई नहीं खाना चाहता है
क्यों आजादी एक जूठी थाली है।"(मुक्तिबोध)

उपर्युक्त पंक्तियाँ भारतीय राजनीति के लिए कवि की एक खुली चुनौती हैं। यदि राजनीति का यह विकृत रूप न होता, तो कवि कदापि इसके विषय में कुछ नहीं लिखता और जहाँ तक राजनीति के विकास का प्रश्न है, तो आप ही अन्दाजा लगायें कि आजादी के लगभग 70 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद हम कहाँ पहुँच गये। कहना न होगा कि इस राजनीति ने विवाद के सिवा कुछ नहीं दिया। हम दिल्ली की बात नहीं करते, हम गांवों की बात करते हैं, जहाँ से स्वस्थ भारत का निर्माण होता है। सिवा जातीय कटुता, पार्टीवाद के हमने कुछ नहीं दिया, वह भी इतने गहरे रंग से छाप डाली है कि शायद दो-चार पीढियाँ व्यतीत हो जायेगी, फिर भी वह रंग नहीं हल्का होगा। मुक्ति बोध लिखते हैं कि -

"मैं मंत्र कीलित सा
भूमि पर गढा-सा
जड खडा हूँ
अब गिरा तब गिरा

इसी पल कि उसी पल।"

कवि नरेश मेहता के समय भी राजनीति विषायुक्त हो चुकी थी। जन सहयोग से व्यक्ति और राजनेता कोसों दूर थे। आपकी व्यक्तिगत रूचि भी राजनीति में नहीं थी, किन्तु उन्होंने राजनेताओं को स्वतंत्रता की परिभाषा से अवश्य परिचित कराया। यथा -

"यह स्वधीनता नहीं है बन्धु!
स्वतंत्रता का अर्थ
अराजकता नहीं होता।
अराजकता
अपराध से भी गम्भीर होता है
क्योंकि
वह राजद्रोह की जननी हैं।"

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 समिधा - भाग एक - नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 432

2. समिधा - भाग एक - नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 17

3. समिधा - भाग एक - नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 21

4. समिधा - भाग एक - नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 23

5. उत्सवा - नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 18

6. उत्सवा - नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 4

7. समिधा - भाग एक - नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 172

8. प्रवाद पर्व - नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 93